1 / ढूंढ ढूंढाड़ की

दूसरी शताब्दी में सामरिक एवं विदेशी आक्रमणों से उत्पन्न परिस्थितियों को समन्वित करने के उद्देश्य से कांगड़ा घाटी, चम्बल तथा ढूंढाड़ के क्षेत्रों में आर्जुनायनों ने पंजाब के यौधेयों से मिलकर एक महाशक्तिशाली गण बनाया था। इसी गण की छत्र छाया में आसपास का (मरुभूमि) राजपूताना भी था, जिसमें आज के भरतपुर, धौलपुर, अलवर तथा जयपुर क्षेत्र आते हैं। इन सभी क्षेत्रों की राजधानी रोहतक थी। यह गणतंत्र उत्तर पश्चिम भारत में शक्तिशाली बन चुका था। आर्जुनायन क्षेत्र का सम्बन्ध विराटनगर या बैराट से भी संबंधित माना जा सकता है, जहां महाभारत के काल में अर्जुन ने पाण्डुवों के साथ अज्ञातवास किया था।

कुशवाहवंश–परम्परा जयपुर के राजाओं की रही है और वे सूर्यवंशी कहलाते हैं। राम की नगरी अयोध्या से लेकर साकेत, रोहतास तक तथा मत्स्य प्रदेश के विराट (बैराठ) तक कुशवाहवंशी राजाओं ने जहाँ अपनी विजय पताकाएं फहराई वहां ग्वालियर, नरवर और आम्बेर (ढूंढाड़ क्षेत्र) में कुशवाह राज्य का विस्तार हुआ। ढूंढाड़ को सुमित्र के वंशज दूल्हेराय या ढोला ने बसाया। यह क्षेत्र पूर्व में मीणा, जाट, राजपूत, गोरा, मोहिल और सांखला जन–जातियों की निवासस्थली रहा है ढोला–मारु की लोककथा के नायक ढोला ने सबसे पहले ढूंढाड की राजधानी दौसा में बनाई बाद में वह रामगढ़ आ गया। उल्लेखनीय है कि आम्बेर के सुप्रसिद्ध जगत शिरोमणि के मंदिर की एक दीवार पर ढोला को मारु के साथ ऊंट पर सवार दर्शाया गया है। यह शिल्पांकन मंदिर के परम्परागत शिल्प से कतई अलग प्रतीकात्मक लगता है। आम्बेर के सम्बन्ध में राजस्थान के सुप्रसिद्ध इतिहासकार कर्नल जैम्स टॉड ने एक रोचक बात कही है कि यूरोपीय लोग राजपूताने के विभिन्न राज्यों को उनके वास्तविक नाम से नहीं पुकारकर उनकी राजधानियों के नाम से पुकारते हैं, जैसे मारवाड़ को जोधपुर हाड़ौती की बूंदी या कोटा तथा ढूंढाड़ को जयपुर या आम्बेर उनके अनुसार राजा नल की तेतीसवीं पीढ़ी के बाद सोढ़ा सिंह के पुत्र धोला राव को पैतृक राज्य से निकाल दिया गया और उसने संवत् 1023 (967) में ढूंढाड़ राज्य के प्रतिष्ठा की । ढूंढाड़ प्रदेश का सम्बन्ध जन–श्रुतियों में जोबनेर के ऊँचे टीले "ढूंढा" के कारण राजा बीसलदेव के साथ जोड़ दिया है।

यों कुशवाह (कछवाह) राजाओं की परम्परा राम के पुत्र कुश से जुड़ी है, ऐसा चारण साहित्य की परम्परा कहती है। राम की नगरी अयोध्या से लेकर साकेत रोहतास, नरवर, ग्वालियर, और आम्बेर तक के विस्तृत भूखण्ड में कुशवाह राजाओं ने अपनी विजय पताकाएं फहराई। इनका सम्बन्ध जिन राजा सुमित्र से भी बताया जाता है, वे कलियुग की शुरुआत में, ईक्ष्वाक्षुवंश की समाप्ति पर राज सिंहासन पर आरुढ़ हुए थे।

कल्की अवतार का घोड़ा

राम की नगरी अयोध्या से लेकर साकेत रोहतास, नरवर, ग्वालियर, और आम्बेर तक के विस्तृत भूखण्ड में कुशवाह राजाओं ने अपनी विजय पताकाएं फहराई। इनका सम्बन्ध जिन राजा सुमित्र से भी बताया जाता है, वे कलियुग की शुरुआत में, ईक्ष्वाक्षुवंश की समाप्ति पर राज सिंहासन पर आरुढ़ हुए थे।

एक अन्य चारण कवि के अनुसार "ढूंढाड़" क्षेत्र उस ढूंढ टीले के नाम पर जाना जाता है, जो जोबनेर में एक विशेष ऊँचाई पर आज भी विद्यमान है तथा जहां चढ़कर राजा बीसलदेव दूर दूर के शत्रुओं पर निगरानी रखते थे और उन्हें "ढूंढ–ढूंढ कर" मार गिराते थे। इसी से इस क्षेत्र का नाम ढूंढाड़ पड़ गया। कोई कहता है कि इस क्षेत्र में कभी ढूंढ–राक्षस का निवास था। वैसे इस क्षेत्र में ढूंढ नाम का एक नद बहता है। वैसे ढूंढाड़ यहां का अति प्राचीन नाम है, इससे पूर्व में यह प्रदेश मत्स्य प्रदेश कहलाता था जहां महाभारत काल में पाण्डवों ने द्रोपदी के साथ अपना अज्ञातवास पूरा किया था। इस क्षेत्र के पाण्डुपोल में पाण्डवों ने भी अपना अज्ञातवास पूरा किया। इस प्राचीन तीर्थ स्थल में जहां भीम ने अपने महाबल से एक चट्टान को तोड़कर मनोरम प्राकृतिक स्थल बनाया। यह क्षेत्र वर्तमान सरिस्का अभयारण्य का ही एक अंग है। विराट सम्राट अशोक के समय भी एक सम्पन्न गणराज्य की राजधानी था। चीनी यात्रियों ने यहां बुद्ध के समय के प्रार्थना स्थल के बारे में लिखा है। यहां अशोक के शिलालेख तथा प्राचीन युद्ध के समय काम में आए तीर भी मिले हैं। विराट भारतीय इतिहास की एक महत्त्वपूर्ण कड़ी है। इस क्षेत्र के माचेड़ी, देवती, नीलगढ़, अजबगढ़, दौसा (खाह) आदि क्षेत्र कभी विशाल जनपद रहे हैं और यहां इतिहास ने कई करवटें बदली हैं। इस क्षेत्र में कई महत्त्वपूर्ण युद्ध लड़े गए। संक्षेप में "ढूंढाड़" क्षेत्र का व्यापक सांस्कृतिक ऐतिहासिक महत्त्व है।

कुशवाहों ने दौसा–खोह में मीणा जनजाति के लोगों को पराजित करके अपना राज्य रामगढ़ में कायम कर लिया था। आमेर में तब मीणाओं का राज्य था। कर्नल टॉड के अनुसार मीणा लोग अम्बादेवी के उपासक थे। बाबर और हुमायूँ के समकालीन, भारमल कछवाहा के समय ये लोग काफी शक्तिशाली थे।

मुगल बादशाह अकबर के साथ राजा भारमल ने अपनी पुत्री का विवाह कर दिया था। फिर उसके बेटे भगवन्तदास ने अपनी बेटी का सलीम के साथ विवाह किया। राजा मानसिंह जो अकबर का एक सबसे ताकतवर और विश्वास पात्र सेनापति था, भगवन्तदास का बेटा था। सबसे पहले भारमल को हुमायूं ने आमेर के राजा के रुप में पांच हजार का मनसब प्रदान किया था। कर्नल टॉड के इस कथन के बारे में इतिहास के अन्य स्रोत मौन है। कछवाहा राजाओं में राजा पृथ्वीराज (1503–1527 ई.) द्वारा स्थापित "बारह कोठरियों" को परम्परा के ही आधार पर आम्बेर जयपुर के नरेशों तथा उनके रिश्तेदारों का एक व्यापक ऐतिहासिक सिससिला चालू हो गया था। पृथ्वीराज के 9 बेटे तथा 3 अन्य रिश्तेदार थे जिन्हें आमेर राज्य की 12 बड़ी जागीरें दी गई थी।

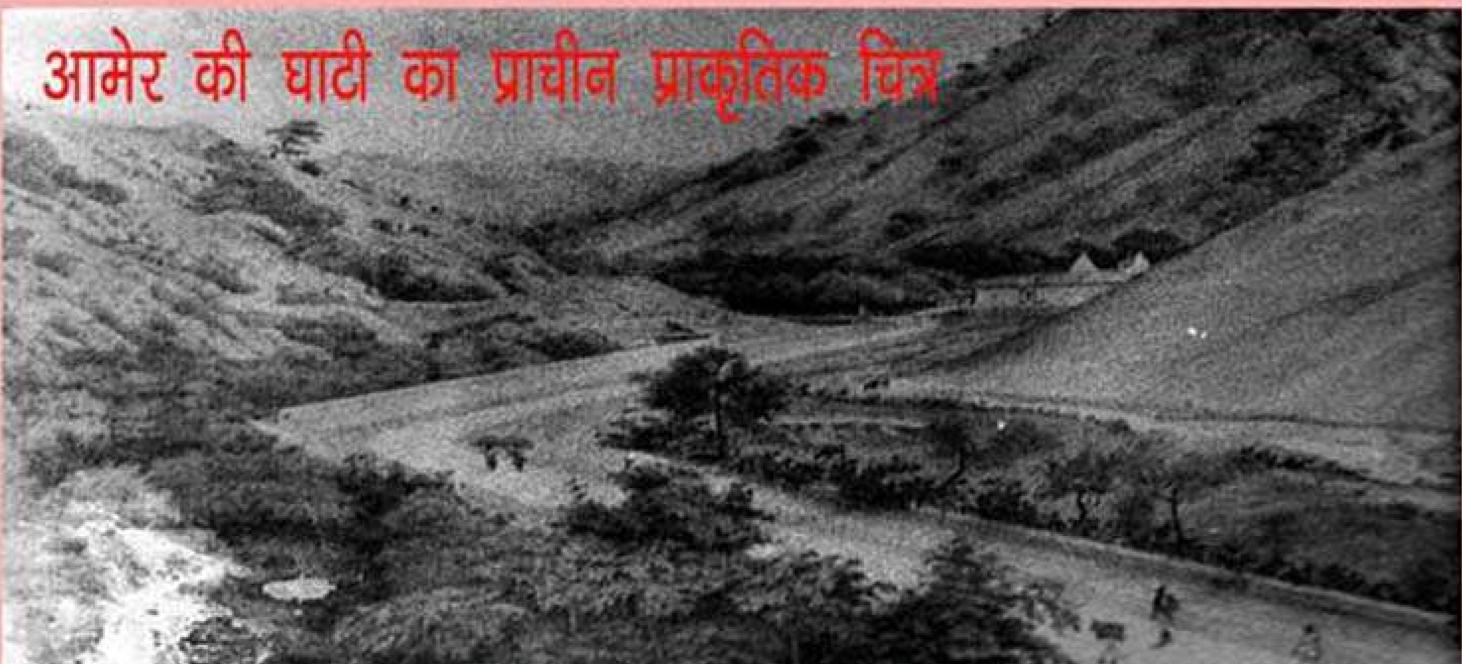

ऐसा बताया जाता है कि सिकंदर यौधयों के पराक्रम व शक्ति से पूरी तरह से परिचित था, इसलिए वह यौधयों के सीमावर्ती क्षेत्रों के पास होकर वापस लौट गया था। सिकन्दर के सैनिकों ने व्यास नदी पार कर के यौधयों की आयुध जीव बतलाया है। पाणिनी का काल ईसा से 500 वर्ष पूर्व का माना जाता है। वस्तुतः कुषाण काल से पूर्व यौधय एक बड़ी शक्ति थे। यौद्येयों की परम्परा चन्द्रवंशीय थी। महाभारत में महर्षि वेदव्यास लिखते है–''जिस प्रकार वसुदेव पुत्र कृष्ण ने पश्चिम दिशा पर विजय पाई। उसी प्रकार पाण्डुपुत्र नकुल ने भी पश्चिम दिशा को परास्त किया था। बाद में नकुल कार्तिकेय की नगरी रोहतक जा पहुंचा। वहाँ मयूरकों से युद्ध हुआ। नकुल ने मयूरक या मरुभूमि पर भी विजय पाई बाद में वह इन्द्रप्रस्थ (दिल्ली) को चला गया। ''हरियाणा के सक्षिप्त इतिहास में भागवान देव आचार्य ने उक्त संदर्भो का उल्लेख करते हुए नकुल द्वारा यौधय युद्ध में जीते गए दस दुर्गों के नाम भी दिए हैं, जिसमें –रोहितक, महेन्थ, मोहनबाड़ी, नौरगांबाद, सागवान, हांसी, राखीगढ़ी, अगरोहा, शैरोषक, और हिसार के नाम आते हैं।

रोहतक, जो अब हरियाणा में है, कभी यौधयों की संसार की सबसे पुरानी टकसाल के रुप में जाना जाता था – जहाँ पुरातात्त्विक खुदाई में खोखरा कोट के खेड़े में यौद्येयों के प्राचीनतम सिक्के प्राप्त हो चुके हैं। इन मुद्राओं पर ''यौधयानाम जय मंत्र धराणाम'' शब्द अंकित हैं। यौद्ययों के गुप्त मुद्रांक (हरियाणा प्रान्तीय पुरातत्व संग्रहालय) में सुरक्षित हैं। यौधयों की अतिप्राचीन महत्त्वपूर्ण मुद्राएं ब्रिटिश म्यूजियम लंदन में भी सुरक्षित हैं।

यौधय के ये प्राचीन सिक्के और मुद्राएं और शिलालेख 200 ई. पू. से 400 ई. तक मिलते हैं। इन मुद्राओं पर ''यौद्येयानाम् जयमंत्र शालिनाम'' अंकित है जो इनकी विजित स्थिति की सूचना देता है।

एक अन्य उल्लेख में यह भी बताया गया है कि लुधियाना के निकट सुनेत के प्राचीनतम दुर्ग में भी यौधयों की विशाल टकसाल था, यहां से जो ठप्पे व सांचे प्राप्त हुए, उनमें भी यौधय गणस्य जय अंकित है। यौधयों के सिक्के चम्बल घाटी में भी मिलते हैं।

2/ बावन कोट व छप्पन दरवाजे ध्वस्त

मुगल बादशाह अकबर

'बावनकोट छप्पन दरवाजा, मीणा मरद नाहण का राजा, मीणा राजाओं के जमाने तब बदल गए। जब दौसा रामगढ़ क्षेत्र के ढूंढाड़ी इलाके मे कछवाह राजपूतों के पैर पड़ने लगे थे। कभी नाहन मीणओं का एक बड़ा शहर था जिसके अन्तर्गत बावन किले व छप्पन दरवाजे आते थे जिस राज्य को भारमल ने मुगल बादशाहों के सहयोग से नष्ट कर दिया था। नाहन व लवाण में मुगलों की स्वतंत्र मनसबदारी थी तथा कभी यह रियासत आम्बेर से भी बडी थी। मीणाओं ने मुगलों की अधीनता स्वीकार नहीं की थी। वे लड़ाकू जातियां थी किन्तु बाद में अकबर बादशाह ने नाहरग वालों से समझौता करके मीणों को भी अपनी फौज में लेना शुरू कर दिया था और मुगल काल में बादशाह की डाक लाने ले जाने में इनको विशेष रुप से रखा गया था। अंग्रेजों के आगमन तक मीणाओं को मुख्य धारा में मिलाना संभव नहीं हो पाया था और यह जाति अपराधी जाति में गिनती आती थी। बाद में स्वतंत्रता के आन्दोलन व व्यापक जन सहयोग से सभी जातियों का भेदभाव समाप्त हो गया और सभी लोग अपना भेदभाव भूलकर एक राष्ट्रीय झण्डे के नीचे आ गए। मीणा का राजा जो नाहण में राज करता था उसकी क्रूरता के कई किस्से मशहूर हैं, तथा उसने भूसा (खाखला चारा व तुस) में भी कर लगा दिया था जिसे पशु खाते थे। इस संबंध में राजा के डूबने यानि राज का अंत आने की बात इस कहावत से स्पष्ट होती है – ''बेड्यो राज नाहण को जब हासिल मांग्यो भूसा को।'' बाद में नाहण का नाम लवाण हो गया। सुभाष चौक में जयपुर की सबसे पहले बसावट हुई तब यह क्षेत्र लवाण राजा का घेरा ही कहलाता था। अभी भी इस इलाके में लवाण वालों के डेरे हैं हालांकि अब यह सारा क्षेत्र दूसरे लोगों के कब्जे में है और पुरानी इमारतों पर सिंधी पंजाबियों व दूसरी जाति के लोगों का कब्जा है। लवाण के राजा का सम्बन्ध दूर राज में मैनपुरी तक हैं जहां के राजा ने कभी अंग्रेजों से लोहा लिया था। काकिल पोता परम्परा के लवाण के राजा भगवान दास ने नई का नाथ को अपनी नई राजधानी बनाया था। इस परिवार को दिल्ली में सीधी मनसबदारी प्राप्त थी। नई में एक विशाल किला भी बनवाया था। उल्लेखनीय है कि एक बार जब आम्बेर के राजा भारमल बादशाह अकबर के सम्पर्क में आ गए और उनकी अधीनता उन्होंने स्वीकार कर ली तो बाद में नाहण के भगवानदास का मार्ग निष्कंटक हो गया। भारमल को अकबर ने अपने अंगरक्षकों के खास विश्वासपात्र दस्ते में मिला लिया था। इसके बाद तो आम्बेर का पूरा क्षेत्र धीरे धीरे कछवाहों के ही राज्य में बदल गया, किन्तु नाहण की स्वतंत्रता आम्बेर से बनी रही। वह दिल्ली के साथ जुड़ा था। यहां के मीणा सरदार केवल इनके किले व महलों के विश्वस्त चौकीदार तथा चाभियां रखने वाले ही बनकर रह गये। हां राजतिलक की रस्म निभाने में इन मीणाओं का योगदान बना रहा।

राजपूत मुगल एश्वर्य की केसर क्यारी संस्कृति आमेर

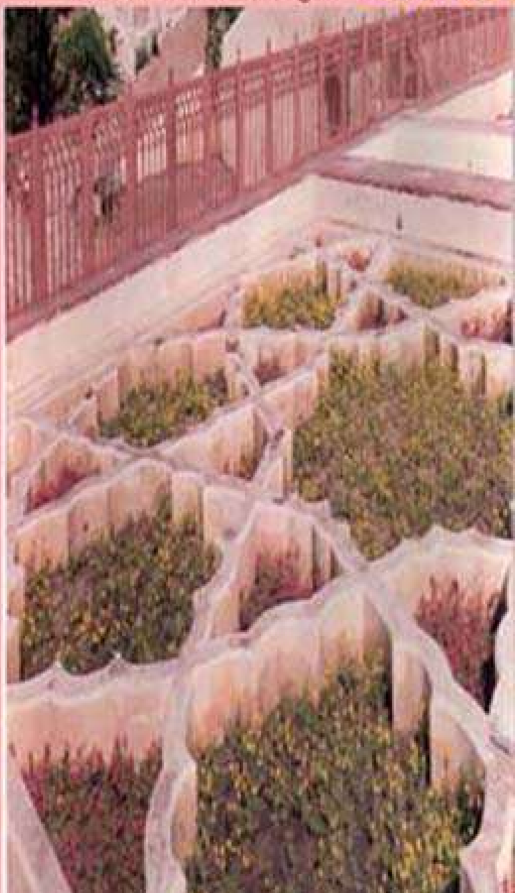

2/ बावन कोट व छप्पन दरवाजे ध्वस्त

कर्नल जेम्स टॉड, सुप्रसिद्ध इतिहासकार अपने हाथी पर सवार साथ में केवलरी

'मीणा राजाओं तथा इनके राज के अवशेष अब भी कुछ मीणा परिवारों के इतिहास में तथा आम्बेर, रामगढ़, जयगढ़ व घाटगेट में खण्डहरों में बदले पुराने उजाड़ महलों मंदिरों व बावड़ियों में आज भी देखेन को मिलते हैं। मीणाओं के नगाड़े व नौबत बाजों के स्थान घाट दरवाजे की पहाड़ियों में आज भी खण्डहर बने हुए हैं, जहां बने हुए पहाड़ के ऊपर के परकोटे में कभी मीणाओं का एकछत्र राज्य था, जो जयगढ़ की पहाड़ियों के पीछे के गांवों में आज भी बसे हैं। ये मीण ा अब खेतीबाड़ी या पशुपालन पर निर्भर हैं और सरकारी नौकरियों में भी उच्च पदों पर आ गए हैं। इनके बारे में एक कहावत यह मशहूर है कि ये काफी ईम. ानदार जाति है और पराये धन पर नजर नहीं रखती। कभी कछवाहों के किले की रक्षा करने वाले एक मीणा सरदार ने अपने बच्चे की गर्दन तलवार से इसलिए काट दी थी क्योंकि बच्चे ने इस महल की फुलवारी से एक फूल तोड़ लिया था। मीणाओं की पहाड़ों पर बिखरी हुई 8 बस्तियां हैं किन्तु पुराने जमाने में ''नगाड़ों की आवाज'' पर ये बड़ी जल्दी एक ही जगत पर एकत्रित हो जाते थे। ये लोग देवी (शक्ति) को मानते हैं। इनकी देवी का नाम ''घाटे की राणी'' है। मीणा जाति के बारे में नाथावतों के इतिहास में यह उल्लेख मिलता है, ''मीणा मिश्र और अमिश्र दो तरह के होते हैं। मीणी के गर्भ में मीणा के वीर्य से पैदा हुए मीणे अमिश्र और क्षत्रिय के वीर्य से मिश्र होते हैं। कर्नल टॉड लिखता है कि ''मीणों के कुल या खापों के नाम से ही इनकी भिन्नता मालूम होती है। मीणा का अर्थ है असली या अमिश्र। ऐसे मीणे इस देश में ''ओसेरा'' है। जिनका वंश लुप्त होता जाता है। इसके सिवा मिश्र मीणा ''वारापोल'' या बाराकुल के कहलाते हैं।

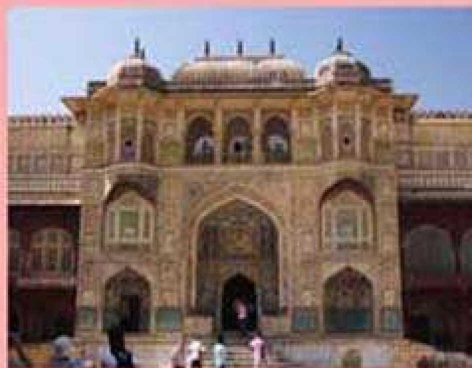

आमेर महल का प्रवेश द्वार

मीणा जनजाति समूह में

2/ बावन कोट व छप्पन दरवाजे ध्वस्त

'वैसे ऐसी किवदन्ती है कि नाहण में कभी रेत की वर्षा हुई थी, जिससे यहां का एक गांव ही रेत में दब गया था। इसीलिए इसका नाम बूडला (भूड़ला) हो गया था। ढूंढ नदी के पूर्वी क्षेत्र में महुआ, तूंगा, बसुआ तक यह राज्य कभी फैला हुआ था। कछवाहों की 53 तड़ें व खेपे हैं जिनमें बांकावत परम्परा के कछवाह राजस्थान में फैले हैं। नाहण या लवाण में पुरानी छतरियां और किले राजा भगवानदास के समय से जुड़े हैं मुगल बादशाह अकबर की कूटनीति के कारण आम्बेर की ताकत को विभाजित कर दिया गया था। इसीलिए नाहण के राजपूतों को मीणाओं को दबाने के लिए काम में लिया गया और यही कछवाह देश–विदेश की कई बड़ी लड़ाइयों में काम में आए।

मीणाओं के क्षेत्र दौसा में स्थित ऐतिहासिक जल संसाधन व्यवस्था को दर्शाती सुप्रसिद्ध चाँद बावड़ी आभानेरी

3/ दूल्हेराय ने मीणों से राज छीना

इतिहास के पुराने पन्नों में अनगिनत रूक्के, पट्टे, पर्वाने, बहीखाते, मुहर, हस्तामलक, कहानियॉं, कहावतें, वस्त्र, शस्त्र, चित्रों और पाण्डुलिपियों व पोथी पानणों का उपयोग किसी भी देश व जाति की जानकारी प्राप्त करने में मददगार साबित होते हैं। जयपुर व आम्बेर के इतिहास की जानकारी के लिए इसके राजा महाराजाओं, सामन्तों के रजवाड़ों और उनके व्यवसायियों, अखबारनवीसों, वकीलों के कागजों और फरमानों तथा बहीखातों की जरूरत पड़ती है। जयपुर के इतिहास में नाथावत सरदारों की भी विशेष भूमिका रही है जिनके बारे में चौमूं से पुस्तक प्रकाशित भी हुई है। इसमें चौमूं मोरीजा, मूंडोता, रायसर आदि ठिकानों के बारे में जानकारी दी गई है। नाथावत खांप के कछवाह क्षत्रियों का जयपुर व आम्बेर में काफी योगदान रहा है। आम्बेर व जयपुर के भाइयों व नाथावतों को पटेल माना जाता था। तन मन और धन सर्वस्व समर्पित करके नाथावतों ने आम्बेर व जयपुर रियासतों में सदैव प्राण प्रण से अपना सहयोग किया है। अभी नाथावतों की तरह जयपुर रियासत के ऐसे कई सरदार व ठाकुरों व बनियों ब्राह्मणों के ठिकाने हैं, जिनकी जयपुर की जानी मानी जागीरें रही है जिन पर विस्तृत किन्तु शोधपरक पुस्तकों का प्रकाशन होना बाकी है। राजपूताना की कला संस्कृति व इतिहास की समृद्ध पृष्ठभूमि और उथल पुथल की जानकारी आज भी ठिकानों के इतिहास में जगह जगह छिपी पड़ी है।

ढोला अपनी प्रेयसी मरवण के साथ ऊँट पर

4/ चरण मंदिर जहाँ कृष्ण के पैर पड़े

श्रीकृष्ण गउओं के साथ

भारत में भागवत धर्म की स्थापना के साथ, जिसका सम्बन्ध वैदिक धर्म के साधारणीकरण से था और जिसके बाद वेदपुराण, उपनिषदों, की सूखी शास्त्रीय चर्चाओं और कर्मकाण्डों की व्यर्थ की कसरतों को दरकिनार कर दिया गया और धर्म ने अपना नया जन आन्दोलन का रुप अख्तियार कर लिया, भगवान कृष्ण का जन्म, विष्णु के एक समर्थ अवतार के रुप में हुआ। विष्णु का कृष्ण में रुपांतरण एक लम्बी धार्मिक-पौराणिक प्रक्रिय ा के बाद हुआ जिसकी पड़ताल का रोचक महत्त्व है। फिलहाल यह बात प्रमाणों के रुप मे ' सामने आई है कि कृष्ण से पूर्व वासुदेव और संकर्षण अथवा बलराम के प्रसंग मिलते हैं। वासुदेव और बलराम से लेकर भगवान बुद्ध तक को, वैष्णव आन्दोलन से जुड़े इतिहासकारों ने ,विष्णु का अवतार स्वीकार किया है- हालांकि बुद्ध को अवतार मानने में विवाद की गुंजायश बनी हुई है।

जयपुर के संदर्भ में अगर देखा जाए तो यहां की प्राकृतिक छ्टा पर्वत श्रृंखलाएं, नदी-नाले और वनस्पतियों तथा वन्य जीवों की प्रचुरता के बीच कि भगवान कृष्ण का भी इस पावन भूमि में प्राकट्य हुआ है और गलता का यह क्षेत्र तो बृजप्रदेश के विस्तार के रुप में कृष्ण की गौओं के चरागाह के रुप में जाना जाता था जहाँ बाल गोपालों और गोपियों के साथ भगवान कृष्ण बंशी की धुन में मस्त हो जाते थे और रास भी रचाया करते थे। गलता की पहाड़ियों में गढ्गणेश के आगे 'चरण मंदिर' इस वनभूमि में कृष्ण के आगमन का सन्देश जन-साधारण को देता है। भागवत-धर्म में तो यह बात स्वीकार की गई है कि जब जब भी भक्तों पर संकट के बादल मंडराएं है तो कृष्ण ने अपने भक्तों की मदद की है और उन्हें संकट से उबारा है। कृष्ण की कूटनीति और सार्वजनीन शक्ति को गोपालकों, यादवों व अहीरों की नई ताकत के रुप में भी देखा जाता है। इसमें क्षत्रियों तथा ब्राह्मणों की परम्परागत चली आ रही प्रभुसंपन्नता को ललकारा गया है, तथा उनका वर्चस्व तोड़ा गया है। इन्द्र के गर्व को तोड़ने की बात तथा सारे वेद पुराण और शास्त्र कर्मकाण्ड छोड़कर केवल कृष्ण का नाम लेने से तथा उनकी शरण में आने से 'बैकुण्ठ का मार्ग प्रशस्त होने का सरल उपाय श्रीमद्‌भागवत् में बताया गया है। भागवत् की सरस कथा के श्रवण से जो लाभ मिलता है ऐसा भागवत में प्रसंग आया है। भागवत् में भक्ति के नए मार्ग को सुझाया गया है और इसे 'कलियुग' में मुक्ति का एक मात्र जरिया बताया गया है। सभी को छोड़कर कृष्ण के शरणागत होने की ही तरह बुद्ध ने भी बुद्धम् शरणं गच्छामि का नारा दिया था। यानि एक को मानो। यह एक तरह की अनन्य भक्ति है।

गलता तीर्थ

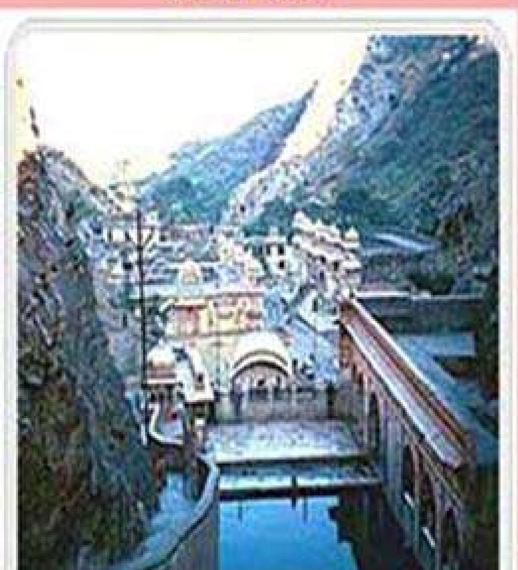

5/पंच गणेश नर्तन मुद्रा में.....

गलता घाटी के प्राचीन बाग बगीचों और नालों खंदकों की अटीपटी हरीतिमा के बीच यह प्रतिमा बड़गुर्जर, मीणा, चौहान व कछवाह राजपूतों की समृद्ध परम्परा में शैव, शाक्त और वैष्णव परातत्व के गरिमामय इतिहास को हमारे सामने लाती है। आम्बेर, जयपुर, जमवारामगढ़, दौसा, बघेरा, आदि वन-अभयारण्यों के बीच यह पंच गणेश की प्रतिमा में चार प्रस्तर गणेश प्रतिमाएं खड़ी मुद्रा में हैं, जबकि तीसरे गणेश और पांचवें के बीच एक गज की प्रतिमा भी गणेश के प्रतीक के रुप में निर्मित की गई है जिन्हें एक ही शिलाखण्ड में संयोजित किया गया है।

विष्णुधर्मोत्तर पुराण में नृत्य को चित्रकलाओं का आधार माना गया है। वैसे भी आदि देवता शिव और उनकी अर्द्धांगिनी शिवा का नृत्य तो सृष्टि की उत्पत्ति, विकास और विनाश का एक प्रतीकात्मक रुपक विविधि कला संदर्भों में, अपनी श्रेष्ठतम अभिव्यक्ति के रुप में स्थापित हुआ है। भगवान नटराज की प्रतिमा सत्यं शिव और सुन्दरम् की इस त्रिकोणात्मक सृष्टि में अपनी सम्पूर्ण शास्त्रीय रचनाशीलता के साथ सृजनात्मक शक्तियों की परम उपलब्धि और उत्कर्ष को उजागर करती हैं। भगवान शिव और पार्वती के पुत्र गणेश और स्कंद की भी अपनी अपनी महिमाएं हैं। सुरासुर संग्राम में, युद्ध और शांति में, शुभ और अशुभ, सृजन और मृत्यु में गणेश और स्कंद की अपराजेय अनंत शक्तियों की क्षमता के किस्से कहानियों और श्लोकों से भारतीय शास्त्र और काव्य भरे पड़े हैं। वैदिक संदर्भ में गणेश की उपस्थिति वक्रतुण्ड के रुप में मिलती है तो महाभारत में महर्षि व्यास के लेखक के रुप में गणेशजी भारतीय जन में एक नई पहचान बनाते हैं। वे अपने अजीबोगरीब स्थूलकाय रुप में भी तथा भीमकाय शरीर के बावूजद अपनी मोदक प्रियता के रहते हुए भी बौद्धिक व धार्मिक कार्यों के अगुवा देवता या हरावल नेतृत्त्व प्रदान करने वाले प्रेरक देवता के रुप में स्थापित हैं जहां गणेश विघ्न हरण करने वाले शुभकर्त्ता माने जाते हैं जिन्हें हर शुभकार्य में न्यौता दिया जाता है, वहां वेदों व पुराणों में अविश्वास व्यक्त करने वाले नास्तिकों के प्रति वे विघ्न बाणों की वर्षा भी करने से नहीं चूकते- इसके बावजूद वे भोले शंकर की तरह ही भोले भाले गणपति बाबा या गणपति बप्पा भी हैं- इस विश्व परिवार के बड़े बूढ़े संरक्षक की तरह- एक लोक देवता, गण देवता, लोकपाल, रक्षक की तरह उनके चार हाथों में सदैव अभयमुद्र. ावाली शक्ति रहती हैं। उनके एक हाथ में फरसा तो रहता ही है ताकि वे किसी भी क्षण आततायी का संहार कर दें। जहां कई मामलों में वे शिव और स्कंद और कार्तिकेय से भी आगे हैं वहाँ मौका पड़ने पर वे नृत्य करने में भी नहीं चूकते। खड़े गणेश और नर्त्तनिरत गणेश की मुद्राएं भारतीय मूर्ति और चित्रकला की एक अलम्य उपलब्धि रही है। आभानेरी और जयपुर में गणेश की नर्त्तन मुद्रा की पांच मूर्तियां उपलब्ध हैं।

जयपुर और आम्बेर के बीचोबीच की अरावली पहाड़ियों के शिखर पर ब्रह्मपुरी और गैटोर की पहाड़ी में नगर की एक रक्षा चौकी गढ़ गणेश के रूप में अपनी ऐतिहासिक भूमिका के रूप में जानी जाती रही हैं, जहां से नगर के चारों ओर ओर दूर दूर तक निगरानी भी रक्खी जाती थी। वहां राजपरिवार की परम्परागत पूजा पाठ भी की जाती थी। सवाई माधोपुर के रणथम्भौर दुर्ग पर्वत के ऊपर भी सिद्धिदाता गजानन का सुप्रसिद्ध मंदिर है।

6/ जगत शिरोमणि मन्दिर

राजपूत काल में निर्मित मंदिरों तथा महलों की परम्परा व उनकी वास्तुकला का सम्बन्ध व इसकी पृष्ठभूमि की पूरी जानकारी देव प्रतिमा तथा मण्डप के निर्माण की दिशा आदि के बारे में भी शास्त्रीय विवेचन में मिलती हैं विवेचन में महल से पूर्व अथवा उत्तर दिशा में मंदिर के मण्डप बनाने का विधान हैं आम्बेर के जगत शिरोमणि मंदिर तथा शिलामाता भी जिन आधारों पर निर्मित किए गये हैं, उनका विधान पूरी तरह से शास्त्र सम्मत हैं इन मण्डपों को सोलह, बारह तथा दस हाथ का बनाने का प्रावधान होता है जिसके मध्य भाग में वेदी होती है। इस वेदी की चारों ओर पांच, चार या सात हाथ का विस्तार होता हैं मंदिर के चारों ओर तोरण निर्माण का भी विधान होता हैं जगतशिरोमणि मंदिर का हस्थी ओर व्याल की संरचना का तोरण अपने आपमें अनुपम है और यह पूरे राजस्थान के मण्डपों में अपनी विशिष्टिता रखता हैं माउण्ट आबू के देलवाड़ा मंदिरों में भी इसी शैली के तोरण हैं औसियाँ के सच्चिय माता के मंदिर की सीढ़ियों तथा गर्भगृह के बाहर एक के बाद एक ऐसे कई तोरण बने हैं जो कि मंदिर की वास्तुकला की संरचना को उजागर करते हैं।

आम्बेर के जगत शिरोमणि मंदिर के प्रांगण में मंदिर से जुड़े गर्भगृह के बिल्कुल सामने निर्मित ''गरुड़ मंदिर'' के सन्दर्भ में वास्तुकारों का यह मत है कि गरुड़ मंदिर की पृष्ठभूमि काफी विस्तृत होती है। जगत शिरोमणि मंदिर में भी तोरण के तत्काल बाद विस्तृत प्रांगण में जो गरुड़ के मंदिर की पृष्ठभूमि का निर्माण करती हैं भारतीय वास्तुरचना के आदर्श के अनुरुप है। गरुड़ मंदिर को तीन चन्द्रशालाओं से विभूषित और सात खण्ड ऊँचा बनाया जाता हैं इसके चारों ओर छियासी खण्ड होते हैं एक अन्य गरुड़ संरचना में दस खण्ड ऊँचे प्रासाद की परिकल्पना की गई है।

भारतीय वास्तुशास्त्र में गरुड़ के अलावा पद्मक, श्रीवृक्षक, वृष, हंस मेरु, हंसक, नन्दन, वर्त्तुल, कैलास, मृगराज, गज, सिंह, कुंभ वल्लभी आदि प्रासादों के वर्णन मिलते हैं। ये वर्णन मत्स्य पुराण में प्रासादों के निर्माण के सम्बन्ध में मिलते हैं ये संरचनाएं श्रेष्ठ, मध्यम तथा कनिष्ठ भेदों के साथ की जाती है। इन भेदों की रचना उनमें निर्मित स्तम्भों की श्रेष्ठ्ता के आधार पर मानी जाती हैं ये संरचनायें भी 26 प्रकार की होती है। इन मण्डपों की रचनायें त्रिकोण, गोलाकार अर्द्ध चन्द्रकार, अष्ठकोणीय, दसकोणीय अथवा चतुष्कोणीय रुप में करनी चाहिए। ये स्थापनाएं राज्य विजय, आयुवृद्धि, वृत्रलाभ लक्ष्मी आदि की प्राप्ति के सम्बन्ध में शास्त्र सम्मत विधि से होता है।

7/ शहर सवाया : जयपुर

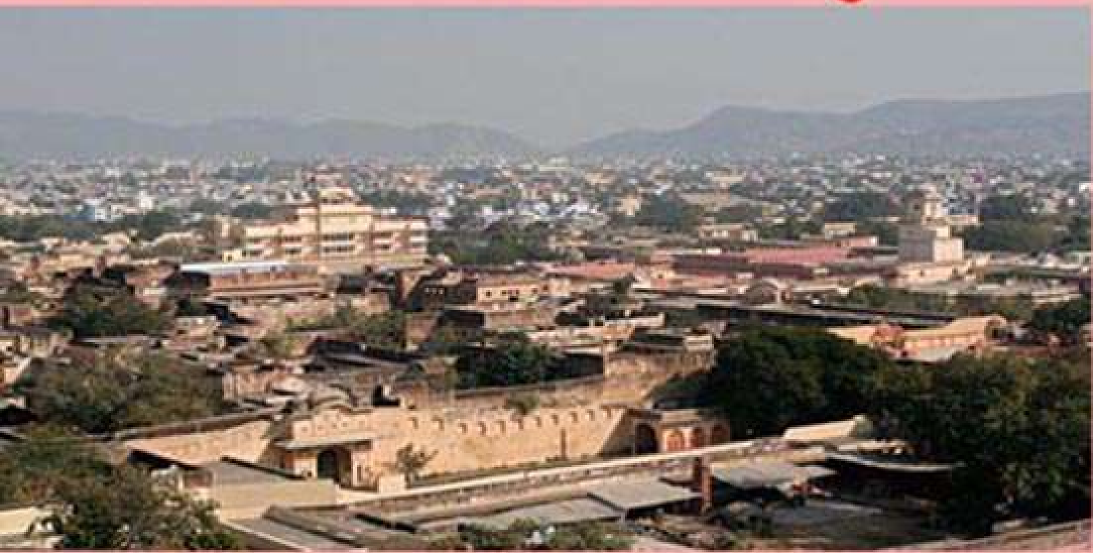

सवाई राजा जयसिंह
संस्थापक जयपुर

जयपुर महाराजा सवाई जयसिंह द्वारा बसाया गया वह ऐतिहासिक विश्व नगर है जो 18वीं शताब्दी के सभी नियोजित शहरों में अपना उल्लेखनीय स्थान रखता हैं विश्व का यह अनोखा शहर अपनी शिल्प और वास्तु रचना के उत्कृष्ट रुपों में हिन्दू मुगल व यूरोपीय प्रभावों को समन्वित रुपों में सामने लाता है। जयपुर की स्थापना 18 नवम्बर 1927 की बताई जाती है, जयपुर ने मराठा और मुगलों के जहां दांव पेंच सहे हैं, ऐसी स्थिति में जयपुर की वास्तुकला व नगर नियोजन के अध्ययन को इस पर पड़े बाहरी प्रभाव के माध्यम से समझा जाना जरुरी है।

जयपुर को भारत के तत्कालीन नगरों में चौथा बड़ा और भव्य शहर माना गया है, और राजस्थान का य ह अपनी तरह का अनोखा, अकेला सिरमौर शहर है। भारत के देशी राज्य की पुस्तक में इसकी सर्वप्रथम तुलना पेरिस से की गई। इस शहर को दुनियां के सर्वोत्तम नगर "लारांतेबोल" जैसा साफ सुथरा नगर माना गया है।

1902 की एक स्कूली बच्चों की किताब के अनुसार जयपुर नगर में 179 तीर्थस्थान या जलाशय अथवा स्नानागार बनाए गये हैं। ऐसा भी उल्लेख किया गया है कि सवाई जयसिंह ने फ्रांस के एक इंजीनियर से पेरिस के नगर का नक्शा मंगवाया था, तथा उसी के अनुसार अपने नगर निर्माण में उसकी अपनी रुचियों व आवश्यकताओं के अनुसार अपनी स्वप्न नगरी में बदल दिया था।

जयपुर नगर की स्थापत्य तथा यहां की सड़कें भवन निर्माण कला गलियां, जल वहन करने वाली गुप्त गंगा जो कि अमानीशाही के नाले व सरस्वती कुण्ड से जुड़ी थी वह रोमन सभ्यता की याद दिलानी हैं इसमें विविधता के बावजूद एक तरह का तारतम्य है तथा एक विशेष अक्ष तथा समानान्तर संरचनाओं पर निर्मित है यह शहर अक्षाकार-समानान्तर रेखाओं के बीच चौरस आकारों में खड़े भवन एक केन्द्रीय महत्त्व की संरचना के चारों ओर स्थित है। यह इजिप्ट की सिम्बोलिक परम्परा से अलग है और इसमें नगर के बीचों बीच में चौक और आन्तरिक खुले आकारों की रचना की जाती हैं ये आन्तरिक आकार विशाल होते हैं, जयपुर नगर नौ वर्गाकारों में विभाजित है, इसे शिल्पशास्त्र पर आधारित बताया जाता है। जयपुर नगर की चौपड़ और उन्हें जोड़ने वाली नहर, बावड़ियाँ जो कि समानान्तर एक दूसरे को काटती सड़कों से जुड़ी हैं रोमन वास्तुकला व नगर स्थापत्य से जुड़ी है।

7/ शहर सवाया : जयपुर

रोम में ''जानस'' नाम के पौराणिक देवता का भी महत्त्व है जो कि सड़कों व जनता के परकोटे पर बने बड़े द्वारा का देवता कहलाता हैं जयपुर में हनुमान की स्थापनाएं भी परकोटे के द्वारा पर ही होती है तथा हिन्दू शिल्प शास्त्रों के अनुसार नगर द्वारों पर देवीदेवताओं व भैंरु की स्थापना की परम्परा रही है। रोम में शहर को परम्परागत रुप से चार चौरस भागों में विभाजित किया गया है, जिसे दो प्रमुख सड़कें समानान्तर काटती हैं। इन्हें ''कार्डो'' और डेफ्यूमैनस कहा जाता है। कार्डो उत्तर से दक्षिण की ओर जाती है और डैक्यूमैनस सूर्योदय की दिशा पूरब से पश्चिम की ओर। मुख्य सडकें शहर के परकोटे के चार प्रमुख दरवाजों से जुड़ी होती है। उपरोक्त तथ्य से यह बात जाहिर होती है कि ध्रुव पोल, सूर. जपोल, चांदपोल तथा गंगापोल आदि पोलों की परिकल. पनाएं रोमन नगर शिल्प पर आधारित है। इससे पूर्व विश्व में ऐसी नगर संरचना का शिल्प नहीं था जिसकी वास्तु रचना जयपुर से मिलती है।

जयपुर के संस्थापक सवाई जयसिंह में एक अन्तर्राष्ट्रीय समझ थी, वे पश्चिम के भी ज्ञान विज्ञान से परिचित थे। नगर की नई योजना और इसके भव्य निर्माण में रोमन वास्तुकला का प्रभाव स्पष्ट रुप से इसी दिशा में हमें सोचने को प्रेरित करता है कि 18 वीं शताब्दी की जय पुर की कल्पना किन स्तरों पर नगर स्थापत्य के भारतीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय आधारों पर टिकी हुई थी।

7/ शहर सवाया : जयपुर

जयपुर नगर के प्रमुख बाजारों राजघरानों की इमारतों व किलो की संरचनाओं के विभिनन स्थानों का सम्बन्ध एक हद तक मुगल वास्तुकला तथा उससे जुड़ी सभ्यता से सम्बन्धित भी लगता है। जयपुर में जौहरी बाजार, चाँदनी चौक, पुरानी दिल्ली के नाम पर बसाये गये हैं। जौहरी बाजार नाम गजनी में बहुत लोकप्रिय था जहां से चंगेजखां की परम्परा शुरु हुई थी, अकबरकालीन फतेहपुर सीकरी में भी दीवाने आम, दीवानेखास जैसी प्राचीन रचनायें तथा मुगल बादशाह अकबर के काम में आने वाले पंचमंजिला हवामहल का नाम तथा उपयोग भी मुगल राजपूत सभ्यताओं के मिलन तथा एक दूसरे के समन्वय का परिमाण है। नगर के तमाम बड़े व छोटे दरवाजे गुम्बद वक्र रेखीय छतें तथ जाली झरोखे, हिन्दू मुगल वास्तुरचना के उत्कृष्ट रचनायें है। दिल्ली के लाल किले तथा अगारा के किलों में निर्मित विशाल शयन तथा स्नानघर के कक्ष तथा फव्वारों की रचनायें भी मुगल गार्डन व हरम के उद्यानों का वास्तु अनुवाद प्रतीत होते हैं। वस्तुतः जयपुर आम्बेर के अक्ष पर खड़ा व समानान्तर भव्य नगर है जो अपनी पूरी कोशिश से मुगल व यूरोपीय वास्तुकला से मुक्त होन की दिशा में एक क्रांतिकारी हिन्दू संरचना हैं। सौभाग्य से स्थापना पुरुष जयसिंह को यह श्रेय व सुयोग मुगल पतन के कगार पर मिला।

....